संगीत एवं मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता

डॉ. गुरदियाल सिंह
अस्सिटेंट प्रोफेसर
संगीत विभाग
पंजाब युनिवर्सिटी, चण्डीगढ़।
मो. ९८१४७२४३६५
E-mail : namdhari24365@gmail.com

संगीत की संवादात्मक प्रक्रिया का एक और अपेक्षित लक्ष्य मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता है अर्थात् मानव मन को सामान्य से उत्कृष्ट बनाना। मानव एक संवेदनशील प्राणी है, वह सदैव अपने आस—पास के परिवेश, वातावरण, घटनाओं तथा परिस्थितियों से प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिवेश आदि का ज्ञान, बोधेन्द्रियों पर पड़ने वाला आघात या प्रभाव स्नायुविक शक्ति का रूप धारण करके जीवन का अंग बन जाते हैं। उनसे किसी न किसी प्रकार समायोजन स्थापित करना हमारे लिए आवश्यक हो जाता है। यह ऐसा भी हो सकता है, जिसे हम पसन्द करें अथवा नापसन्द, उसे अपने स्नायुमण्डल से बाहर रखना चाहिए। लेकिन एक बार प्रवेश पा लेने के बाद आघात्मक प्रभाव जीवन का अंग बन जाते हैं। आघातों से उत्पन्न इस मानसिक समायोजनाओं का घटना चक्र स्नायुमण्डल में घटित होता है जो कि संवेदनाओं का रूप धारण कर लेती है। अत: स्नायुमण्डल पर पड़ने वाले प्रभाव से ही संवेदनात्मक प्रकिया का जन्म होता है। संवेदना मानव के अनुभव करने वाली एक मानसिक प्रक्रिया है मानव जिन संवेदनाओं को ग्रहण करता है वे है—
१. दृष्टि संवेदना, २. श्रवण संवेदना, ३. ध्यान संवेदना, ४. स्वाद् या वाचा संवेदना और ५. स्पर्श संवेदना।[१]

आज मानव और समाज के व्यवहार सम्बन्धी अध्ययन का कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसमें मनोविज्ञान के अध्ययन की आवश्यकता अनुभव न हो। समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, साहित्य, संगीत आदि सभी विषयों के अध्ययन अध्यापन में मनोविज्ञान अत्यन्त सहायक है। जिस प्रकार जटिल व कलिष्ट विषय भी मनोवैज्ञानिक अध्ययन की सहायता से रोचक एवं ग्राहा बनाए जा सकते हैं और उन्हें शिक्षार्थी की स्मृति में स्थाई रूप से परिपक्व किया जा सकता है उसी प्रकार संगीत के अनेकानेक प्रयोगों से शिक्षार्थी की रमृति, बौदिक क्षमता, संवेदनशीलता, अभिव्यक्ति

[१] मानवीय संवेदनाएँ और कला—मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, डॉ. सुरेखा सिन्हा, संगीत, जून १९९२, पृ. ३१

एवं अनुभूति क्षमता आदि में वृद्धि करते हुए उसके व्यक्तित्व का परिष्कार भी किया जा सकता है।

संगीत के स्वर, लय, ताल, पद, वर्ण, अलंकार तथा तकनीकी प्रयोग आदि अपने–अपने वैशिष्ट्य से मानव मन एवं स्नायुतन्त्र पर जो प्रभाव डालते हैं वह सम्यक रूप से मानवीय प्रयत्नों एवं उसकी संवेदन क्षमता का ही परिणाम होते है। इनके पोषण एवं संरक्षण में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'स्मृति' की विशेष भूमिका होती है।

संगीत सम्बन्धी अध्ययन एवं उसकी सामान्य प्रयोजनीयता के साथ–साथ उसमें निहित जटिलताओं एवं उत्कृष्टताओं को सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से अपनाने एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उन्हें प्रभावशाली बनाने में व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता, बौद्धिक विकास एवं बौद्धिक परीक्षण की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

संगीत एक ओर पठन–पाठन तथा अध्ययन का विषय है तो दूसरी ओर कला के प्रति जन्मजात रुचि, प्रतिभा एवं कला के माध्यम से प्रदर्शित होने वाली बौद्धिक परिपक्वता का सूचक भी। संगीत के लिए अनुकूल मानसिक योग्यता एक ओर वंशानुक्रम पर आधारित होती है तथा दूसरी ओर अर्जित होने वाले ज्ञान उपलब्ध वातावरण पर। इसीलिए यह स्वीकार किया गया कि उपयुक्त शैक्षिक वातावरण यदि सामान्य बुद्धि में थोड़ी घनात्मक वृद्धि करने में समर्थ होता है तो यह वृद्धि उसकी कलात्मक क्षमता में भी साकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है।

संगीत के अनेक प्रकार, प्रयोग विधाओं एवं शैलियों आदि का व्यक्ति के शैशव काल, बाल्यकाल, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में क्या व कैसा प्रभाव पड़ता है, उसकी बौद्धिक अभिवृद्धि किस प्रकार प्रभावित होती है यह सभी मनोविज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त विशद विश्लेषण के विषय है। परन्तु फिर भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बालक के लिए प्रत्येक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक कार्य करने के लिए विशिष्ट काल एवं अवधि होती है, जिससे वह उस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में सर्वथा योग्य होता है। उसी प्रकार संगीत के विभिन्न प्रयोगों के अनुकूल होने पर ही वह विशिष्ट आयु वर्ग एवं बौद्धिक परिपक्वता करने एवं उनके बौद्धिक स्तर में अनुकूल परिवर्तन लाने में समर्थ सिद्ध होता है।

किशोरावस्था में बौद्धिक रूप से कल्पनाशीलता की बहुलता होने के कारण संगीत के रचनात्मक कार्य में भी बालक विशेष रूचि लेते हैं इसीलिए गीत रचनाओं में तकनीकी दृष्टि से आलाप–तान आदि के रूप में संगीत के ध्वन्यात्मक प्रयोगों में भी परिवर्तन लाते हुए उनकी कल्पनाशीलता का लाभ उठाने की चेष्टा पुन: उसकी अपनी कल्पनाशीलता, विचारशीलता एवं बौद्धिक परिपक्वता के विकास में सहायक बनती है। संगीतात्मक रचनाएँ बालक के व्यक्तित्व को एक ऐसी दिशा प्रदान करती

है, जिनमें निहित संगीतात्मकता किशोर बालक के अन्तर्मन तक उतरकर उसे एक अच्छा नागरिक बनने में सहायता करती है।

संगीत में संवेगों को सन्तुलित करने की बहुत अधिक क्षमता है क्योंकि संगीत का ध्वनि प्रवाह अपने सौन्दर्यात्मक लक्षणों के अन्तर्गत भावानात्मक तृप्ति का सर्वोत्तम साधन माना गया है। संगीत का उद्देश्य अभिव्यंजना के माध्यम से आनन्द की उपलब्धि कराते हुए भावनाओं का उद्वेलन कर व्यक्ति की चिन्तन शक्ति एवं अनुरूप क्षमता में वृद्धि करते हुए मानव का नैतिक उत्कर्ष करना तथा उसे आत्मसन्तुष्टि प्रदान करना है। अत: इस रूप में संगीत मन को लुभाने वाला, भावनाओं को उद्वेलित करने वाला और संवेगात्मक विकास को अत्यन्त प्रभावित करने वाला सिद्ध होता है और अपनी चरमोत्कृष्ट अवस्था में सौन्दर्य का प्रतिरूप बन कर किशोर के व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं नैतिक रूप से उत्कृष्ट करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है।

किसी व्यक्ति की संगीत के प्रति या कलाकार की संगीत कुशलता का आँकलन करते हुए उसके कण्ठ स्वर, कला कौशल, कला पाण्डित्य आदि के साथ–साथ उसके चेहरे तथा अंग प्रत्यंगों की संगीत के साथ संलग्नता भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि यह मुखाकृति के संकेत संवेगात्मक प्रेषणीयता के माध्यम से कलाकार व आस्वादक के मध्य हेतु का कार्य करते हैं। यद्यपि ध्वनि व लय अपने विभिन्न रूपों में संवेगात्मक प्रभाव डालती ही है जैसे दु:ख और विरह में शान्तमय संगीत, मध्य या विलम्बित लय प्रयोग अच्छा लगता है जबकि वीर, उत्साह तथा संयोग श्रृंगार में कदाचित् ततीव्रता से किए गए स्वर प्रयोग व द्रुत लय आदि की समायोजना भावों के प्रकाशन में अधिक उपयोगी प्रतीत होती है तद्यपि कलाकार की संवेगात्मक प्रेषणीयता तथा आस्वाद की संवेगात्मक ग्राह्यता भावनात्मक प्रक्रिया का निर्माण करती है. जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोनों को एक–दूसरे से जोड़ देती है। संगीत में भावात्मकता का निर्माण स्वर समुदायों तथा स्वर संवादों आदि के साथ किए गए तकनीकी प्रयोगों व लय प्रयोगों के माध्यम से होता है। अनेकानेक रागों की स्वरावलियाँ एक समान होने पर भी वादी–संवादी प्रयोगों, न्यास के स्वरों की भिन्नता, स्वरों के अल्पत्व–बहुत्व तथा विशिष्ट स्वर संयोजनाओं पर आधारित चलन के कारण भिन्न–भिन्न परिणामों में अपना प्रभाव डालती है। उदाहरणस्वरूप भैरव–कालिंगडा, मारवा–पूरिया, मधुमाद सारंग–मेघमल्हार आदि। इसी प्रकार तोड़ी, दरबारी, जोगिया आदि अपने विधागत स्वरूप का प्रदर्शन करते हुए भी करुण या विरह भाव के अधिक समीप माने जाते हैं जबकि यमन, बागेश्री, बिहाग आदि रागों को श्रृंगार के निकट समझा जाता है। केवल यही नहीं राग–प्रदर्शन में प्रयुक्त स्वर संयोजनाओं में निहित गति प्रधानता भी अपना विशेष महत्त्व रखती है उदाहरणस्वरूप पीलू, सिन्दूरा, भैरवी, खमाज, झिंझोटी आदि

रागों में मध्य या द्रुत लय का प्रयोग निरन्तर दृष्टिगोचर होता है। परन्तु इस प्रकार किया गया स्थूल विभाजन भावात्मक निर्माण का केवल संकेत मात्र है। संगीत सागर स्वंय में इतना विस्तृत है कि अनगिनत लहरों की भाँति संगीतात्मक प्रयोगों को भी पूर्णत: परिभाषित करना सम्भव नहीं है। केवल यही कहा जा सकता है कि जिस प्रकार का संवेग संगीतकार में विचरता है वही उसके संगीत में प्रकाशित होता है। संगीत कला द्वारा मानव अनेक प्रकार के दबे हुए मनोभावों को परिष्कृत रूप में स्वीकार करने में भी समर्थ हो सकता है। 'मनोविज्ञान' मानव की मन:स्थिति का अध्ययन करता है और संगीत मानव मन के भावों को अभिव्यक्त करता है। इसी कारण संगीत मनुष्य को तनावमुक्त करके सन्तुलित व्यवहार की ओर प्रेरित करता है।[२]

संगीत के द्वारा भावों को उद्दीप्त किया जा सकता है, जिसे साहित्य व संगीत की शब्दावली में 'रसानुभूति' कहा जाता है। संगीताचार्यों ने रस को संगीत की आत्मा माना है और स्वरों के साथ रसों का सम्बन्ध स्थापित किया है। श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, अद्‌भुत, वीभत्स, शान्त आदि रसों के स्थाई भाव क्रमश: प्रेम, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, विस्मय, घृणा व निर्वेद है। मनोविज्ञान में इन्हीं स्थाई भावों का विवेचन है तथा संगीताचार्यों ने तो स्वरों के रस व भाव ही नहीं बताए अपितु उनके रंगों की कल्पना भी की है। नारदमुनि के अनुसार—

पद्याम: पिंजार: स्वर्णवर्ण: कुन्दप्रभ: सित:
पीत: कुर्वर इत्येते तेषां वर्णा निरुपिता:।।३०।।
षड़ज: कमलवर्ण: स्याहषभ: पिंजरस्तथा।
गान्धार स्वर्णवर्ण: स्नान्मध्यम: कुन्दवर्णक:।।३१।।
पंचम: सितवर्ण: स्याद्‌धैवत: पीतवर्णक:।
नैषाद: कर्वुरो वर्ण: सप्तवर्णा निरूपिता: ।।३२।।

(संगीताध्याय प्रथमपाद, श्लोक ३०, ३१, ३२)

इसी प्रकार रागों के स्वरूपों के आधार पर अनेक मनोवैज्ञानिक प्रभावों को दृ ष्टिगत रखते हुए ही सम्भवत: नारद ने रागों को पुल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसकलिंग में वर्गीकृत करते हुए उनका सम्बन्ध रसों के साथ स्थापित करते हुए कहा है—

रौद्रेऽद्‌भुते तथा धीरे पुंरागै परिमीयते।
श्रृंगारहारयकरुणं स्त्रीरागैश्च प्रगीयते।।६३।।
भयानके घ विभत्री शान्ते गायन्पुंसके।

[२] संगीत और मनोविज्ञान, डॉ. वी.एल. शर्मा, संगीत, सितम्बर, १९९२, पृ. ३१

अनेन विधिना ज्ञात्वा गेयं सर्वार्थसाधनम्।।६४।।

यद्यपि उपर्युक्त कल्पना का कोई ठोस आधार नहीं दिखाई देता है। किन्तु आज मनोविज्ञान के आधार पर इसका निश्चय ही ज्ञात किया जा सकता है कि किस स्वर संयोजना का किस परिस्थिति विशेष में मानव के संस्कार, परिस्थिति व परिवेश आदि को दृष्टिगत रखते हुए क्या प्रभाव पड़ेगा? यहीं से सगीत द्वारा मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता की भूमिका प्रारम्भ होती है क्योंकि स्वर, लय तथा ताल के प्रभाव द्वारा गायक वादक जो अपनी अभिव्यक्ति करता है। उसका वास्तविक प्रभाव श्रोता पर देखा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता का सम्बन्ध मन से है। 'मन' अमूर्त है, जिसका विश्लेषण सम्भव नही है। 'मन' को मानसिक क्रियाओं का समूह कहा जा सकता है अर्थात् व्यवहार की अनुभूति मानव शरीर में जिस स्थान पर होती है, उसे 'मन' कहते हैं।

मन की अचेतन अवस्था एवं संगीत का संगम एक ऐसा बिन्दु है जिसे धरती और आकाश का मिलन स्थल कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। ''संगीत की व्यापकता का रहस्य यही है कि उसके द्वारा केवल चेतन मन ही प्रभावित नहीं होता, अपितु अचेतन मन पर भी संगीत का उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। संगीत के महत्त्वपूर्ण प्रभाव का समर्थन एवं पुष्टि करती हुई कु. व्हील्स भोम कहती है—मेरा यह व्यक्तिगत अनुभव है कि जिन रोगियों पर औषधि असफल हुई है उनको संगीत द्वारा ठीक किया है।''[३]

संगीतोपचार व राग चिकित्सा दोनों प्रणालियाँ संगीत की संवादात्मक प्रक्रिया का ही परिणाम है। क्योंकि संगीत लहरी मानव के शरीर व मन दोनों को प्रभावित करती है जो कि मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता का अच्छा उदाहरण है।

संगीतोपचार के सन्दर्भ में संगीत से प्राप्त आनन्दानुभूति एवं रसास्वादन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया विश्लेषणात्मक दृष्टि से मनुष्य के व्यक्तित्व से सम्बन्धित उन सभी केन्द्रों को प्रकाशित करती है, जो व्यक्ति के मन और मस्तिष्क की प्रभाव क्षमता की अवस्था में क्रियान्वित होती है। मनोवैज्ञानिक रूप से संगीत केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं, बल्कि सामाजिक उपयोगिता के रूप में भी अपनी कलात्मक सिद्धि व गरिमा को प्रमाणित करता है। संगीत को व्यक्तित्व के विकास के लिए उपादान सर्वसिद्ध रूप से माना गया है।

डॉ. शंकरलाल मिश्रा के अनुसार—प्रयोगात्मक स्तर पर यह भी अनुभव किया गया कि धुनों के साथ मंजीरा बजाने से विशिष्ट लय के कारण रोगियों का मस्तिष्क

[३] मन और संगीत, संगीत, मई १९७७, पृ. २७

शीघ्र केन्द्रित हो जाता है तथा इसकी धातु विशेष तथा ध्वनि विशेष की तरंगों से शरीर व मस्तिष्क शीघ्र प्रभावित होते हैं।[४]

सामवेद में रोगों के निवारण के लिए गायन का विधान मिलता है। अश्विनी कुमारों के 'भैषज मन्त्र' में हर रोग के लिए चार प्रकार के भैषज कहे गए हैं—पवनौकस, जलौकस, वनौकस और शाब्दिक। क्रौच मुनि के ग्रन्थ 'कुर्णकप्रभा' के प्रथम प्रकरण में शब्द की उत्पत्ति, शब्द और शरीर का सम्बन्ध, शब्द समय में राग मान और शब्द विकृति के प्रकार दिए हुए हैं। अब तक के अध्ययनों व प्रयोगों के आधार पर कहा जा सकता है कि भविष्य में संगीत चिकित्सा पद्धति के विकसित रूप में सामने आने की सम्भावना है।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक उत्कृष्टता की दृष्टि से संगीत की संवादात्मकता व्यक्ति के अन्तर्मन को पूर्णत: प्रभावित करके उसे अधिक संवेदनशील, उसके स्नायुतन्त्र को एवं बोधेन्द्रियों को अधिक सशक्त एवं उसकी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति क्षमता को अधिकाधिक प्रभावशाली बनाने की सामर्थ्य रखती है। मन व मानव व्यवहार के वैज्ञानिक अध्ययन से समन्वित मनोविज्ञान के साथ संगीत की संवादात्मक सम्बद्धता, व्यक्ति की जीवनधारा को प्रशस्त करके उसके मानतिक अवरोधों व अस्वस्थताओं को दूर करके, उसे समाज की गतिविधियों से परिचित करवाकर एक आदर्श व्यक्तित्व का अधिकारी बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

[४] संगीत और संवाद, अशोक कुमार, पृ. १९२